परम वैभव
का
संघ-मार्ग
— दत्तोपन्त ठेंगड़ी

# परम वैभव का संघ मार्ग

लेखक :

दत्तोपंत ठेंगड़ी

लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

# राष्ट्र के परम वैभव का संघ मार्ग

## यदा यदा हि धर्मस्य..

देश के विभिन्न क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए तरह-तरह के लोगों से मुलाकात होती है। ऐसा कुछ वायुमण्डल दिखाई देता है कि लोग बड़े चिन्तित हैं। कुछ समय पूर्व एक पुराने बाल मित्र मिले। वह कहने लगे कि "तुम्हारा संघ क्या कर रहा है? देश की स्थिति इतनी बिगड़ रही है। मैं तो बड़ी चिन्ता में हूँ।" मैंने कहा, "भैया! तुम्हें यह सोचकर कितनी रात नींद नहीं आई कि पंजाब का क्या होगा, असम का क्या होगा? कितनी रातें तुमने बिना सोये बिताई हैं?" वह बोले, "ऐसा तो नहीं है।" मैंने कहा, "तुम्हारा खाना-पीना कुछ कम हो गया है क्या?" बोले- "वह तो ठीक चल रहा है।" मैंने कहा कि "तुम्हारा घर या व्यवसाय की तरफ से ध्यान कम हो गया है?" बोले, "वह तो चल रहा है।" पुन: मैंने पूछा कि "फिर तुम्हारी चिन्ता क्या है? ऐसी चिन्ता रहना तो ठीक है। चिन्ता भी हैं और वजन भी बढ़ रहा है।"

चिन्ता रहना तो अच्छा है। असन्तोष के कारण आदमी और ज्यादा काम करता है तो वैभव प्राप्त होता है। लेकिन यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हमारे स्वयंसेवकों के मन में भी बड़ी चिन्ता हो रही है। बाहर का आदमी ऐसी चिन्ता करे तो कोई आश्चर्य नहीं है। स्वयंसेवक जब कहता है कि मन में चिन्ता हो रही है तो बड़ा आश्चर्य होता है।

जब स्वयंसेवक नेकर पहनकर जाड़े के दिनों में संघ-स्थान पर आते हैं, तब कम्बल ओढ़कर जो जनता सोई रहती है, उसकी ज्यादा-फिक्र करनी है क्या? फिक्र करनी है, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन इतनी फिक्र करनी है, जिसकी एक सीमा हो। लगता है कि हमारा स्वयंसेवक वायुमण्डल के प्रभाव के कारण ऐसा सम्वेदनशील हो गया है कि किसी ने कुछ भी कहा तो उसके मन पर असर होता है। अरे वे कहने वाले कौन हैं जिन्होंने सुबह नहा-धोकर, कपड़े पहन कर दुकान पर जाने से पहले चाय पीते-पीते अखबार पढ़ना है और इतने में अगर कोई प्रचारक

आ जाए तो पूछना है, "क्यों रे! पंजाब में, असम में तुम्हारा संघ क्या कर रहा है?" उनके सामने हमारा ध्येय कि 'परम वैभव नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम' नहीं हैं, उन्हें तो अपना बैंक बैलेंस बढ़ाना है। बैंक बैलेंस बढ़ाने की प्रक्रिया में किसी बाहरी परिस्थिति की बाधा न आ जाये, इसलिए संघ के स्वयंसेवकों को कहना है कि 'बेटा! मोर्चे तुम संभालो, दुकान मैं सम्भालूँगा।' ऐसे लोगों की कुछ फिक्र नहीं करनी है। उनकी मानसिकता यह होती है कि "खाने को हम हैं, लड़ने को तुम।" यह सच है कि हमें हरेक हिन्दू की फिक्र करनी है। सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र हमारा है। पर स्वयंसेवकों की बहुत ज्यादा संवेदनशील होने की आदत गलत है। जो लोग चाय पीते-पीते अखबार का शीर्षक देखते हुए प्रचारक से प्रश्न करते हैं, हमें उनकी चिन्ता नहीं करनी है। यानी तथाकथित जनता की अपेक्षाओं की चिन्ता नहीं करनी है, यद्यपि जनता की भावनाओं की कद्र हमें शत-प्रतिशत करनी है। भावनाओं की कद्र करना अलग बात है और अपेक्षाओं की चिन्ता करना अलग बात है। हाँ, हिन्दू राष्ट्र यदि सगुण-साकार रूप में हमारे सामने खड़ा हो जाए और वह हमसे कहे कि तुमसे हमारी यह अपेक्षा है तो उस अपेक्षा की पूर्ति के लिए हम अपनी जान की बाजी लगा सकते हैं। दुकान मकान की चिन्ता में ही लगे रहने वाले लोगों को अपेक्षाओं की आवश्यकता से अधिक चिन्ता करने की, संघ स्वयंसेवकों को आवश्यकता नहीं है। इसका मतलब यह है कि परिस्थिति बड़ी अच्छी है। परिस्थिति खराब है। परिस्थिति में आत्मसंतोष के लिए बिल्कुल गुंजाइश नहीं है। उदासीन रहना आज किसी भी देशभक्त के लिए सम्भव नहीं है। लेकिन साथ ही साथ "मर गये रे बाप, डूब गये रे बाप"- ऐसे आर्तनाद की भी आवश्यकता नहीं है। कारण यह कि हम वीर पुरुष हैं। 'परं साधनं नाम वीरव्रतम्' यह घोष बताता है कि वीर पुरुष कठिनाई को किस तरह से लेता है। जो कायर होते हैं उनके लिए अवसर भी विपत्ति बन जाता है। जो वीर पुरुष होते हैं उनके लिए कठिनाई भी अवसर बन जाती है। यदि रामचन्द्र जी पर इतना बड़ा संकट न आता तो किसको पता चलता कि रामचन्द्र जी का पौरुष क्या है? उनका नाम लाखों राजाओं में आता भी या नहीं? और कायर के हाथ में आप शिवाजी की तलवार भी दे दीजिए, वह दुश्मन का गला काटने की बजाए अपना ही पैर काटेगा, इसमें कोई शक नहीं। जैसे दो तरह की गेंद होती है- एक रबड़ की, एक मिट्टी की। रबड़ की गेंद जमीन पर पटक दीजिए। वह पटकने वाले के सिर तक उछल जायेगी। मिट्टी की गेंद सज्जन है। वह चुपचाप वहीं बैठ जायेगी। शेक्सपियर ने कहा है – "Cowards die many a times before their death.

The valients but once.” (कायर लोग मृत्यु से पहले कई बार मर जाते हैं पर बहादुर सिर्फ एक ही बार मरते हैं।) हमारे स्वयंसेवकों की गिनती क्या कायरों में है? यदि कोई कठिन कार्य है तो हम उसको आव्हान के रूप में लेते हैं। सोचते हैं कि यह तो मेरे लिए अवसर आ गया, मैं अपने पौरुष, अपने कर्तव्य का परिचय दूँगा। लोग कहते हैं कि यह अभूतपूर्व स्थिति किसी व्यक्ति विशेष के लिए होगी, किन्तु हमारा सनातन हिन्दू राष्ट्र इससे कई गुना संकटपूर्ण परिस्थितियों में से हजारों बार गुजरा है। तभी तो बार-बार भगवान को अवतार धारण करना पड़ा। भगवान ने यह आश्वासन भी दिया कि जब संकट आयेगा तो फिर आऊँगा। लेकिन लोग भगवान के आशय को समझते नहीं हैं। लोग पूछते हैं, “यतो धर्मस्ततो जय:।” जहाँ धर्म है वहाँ विजय होती है। यहाँ तो अधर्म बढ़ रहा है, पाप बढ़ रहा है। धार्मिक लोग पीछे जा रहे हैं। हम कहते हैं कि भाई! आपने भगवान का वचन आधा ही सुना है। उसने यह नहीं कहा कि तुम्हारी रक्षा करेगा। उसने कहा कि ‘परित्राणाय साधूनाम’ आप साधु हैं यह तो आप खुद को प्रमाणपत्र दे रहे हैं। इसकी गारण्टी क्या है कि आपका स्वयं को दिया गया प्रमाण पत्र सत्य है? और फिर भगवान ने सिर्फ यही आश्वासन नहीं दिया कि “यतो धर्म: ततो जय:।” यह भी कहा है कि “यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत”- जब-जब धर्म की ग्लानि होगी मैं आ जाऊँगा। उन्होंने यह नहीं कहा कि यदा हि धर्मस्य ग्लानि... जब एक बार कभी धर्म की ग्लानि होगी तो मैं आऊँगा और सदा के लिए अधर्म का नाश करूँगा, धर्म की विजय हो जायेगी, मैं वैकुण्ठ में जाकर सो जाऊँगा, आप भी घर जाकर सो जाइये। प्रभात शाखा में आने की जरूरत नहीं है, ऐसा उन्होंने नहीं कहा। उन्होंने कहा कि जब-जब धर्म की ग्लानि होगी तब-तब आऊँगा। यानी बार-बार धर्म की ग्लानि होने वाली है। उन्होंने ग्लानि शब्द का प्रयोग किया है, नाश नहीं। धर्म की ग्लानि होती है, धर्म का नाश नहीं होता। धर्म की मृत्यु नहीं होती। इसलिए चिन्ता की बात क्या है? हमारे देश ने आज से हजारों गुना कठिन परिस्थितियों में से रास्ता निकाला है।

## परिस्थिति चक्र

अभी तीन सौ साल पहले समर्थ रामदास ने बारह वर्ष तक भारत भ्रमण किया। उन्होंने उस समय के समाज की स्थिति का जो चित्रण किया है उसकी तुलना में आज की स्थिति कुछ भी नहीं हैं। वे एक संत थे। राजनीतिक प्रचारक

नहीं थे। उनसे झूठ की आशा नहीं की जा सकती। उन्होंने तब के समाज के बारे में जो लिखा है उसकी तुलना में आज कुछ भी संकट नहीं है। उन्होंने कहा कि जान, माल, इज्जत सब नष्ट हुआ है। तीर्थस्थान भ्रष्ट हो गये, धर्म-स्थान नष्ट हो गए, सम्पूर्ण पृथ्वी आन्दोलित हो गई। ऐसा माहौल था उस समय। किन्तु पच्चीस साल के अन्दर-अन्दर छत्रपति शिवाजी का राज्यारोहण हुआ और इसी सन्त ने कहा कि एक कोने में ही क्यों न हो, अब आनन्द-वन-भुवन का निर्माण हुआ है, जहाँ स्नान संध्या, तप-अनुष्ठान निर्विघ्न ढंग से हम कर सकते हैं। उसके बाद सवा सौ साल नहीं हुए और हिन्दुओं के घोड़े कश्मीर से कन्या कुमारी तक संचार करने लगे। हमारी परम्परागत सीमा अटक नदी तक थी, उसको पार करके हमारी सेनाएँ गयी, भगवा ध्वज उन्होंने सीमा के उस पार फहराया। भगवा ध्वज की वन्दना करने के लिए अफगानिस्तान के अमीर अहमदशाह अब्दाली का भतीजा वहाँ आया, सवा सौ साल के भीतर सारी परिस्थिति ही बदल गई। यह तो चक्र है, निरन्तर चलता ही रहा है। रिक्ता भवति भरिता-भरिता च रिक्ता कुछ पात्र भरते हैं और खाली हो जाते हैं, खाली फिर भर जाते हैं। भगवान का यह चक्र चलता रहता है, इसमें चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। आज हम कह रहे हैं कि असम का क्या होगा? तमिलनाडु का क्या होगा? पंजाब का क्या होगा? देखा जाये तो १९४७ के पहले सम्पूर्ण हिन्दुस्थान यवनों के हाथों में था। सम्पूर्ण देश में १९४७ से पहले एक इंच भूमि ऐसी नहीं थी जिसे हिन्दू स्वराज्य कह सके।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का निर्माण किसी भावना या उत्तेजना में आकर नहीं हुआ है। श्रेष्ठ पुरुष जन्मजात देशभक्त डाक्टर जी जिन्होंने बचपन से ही देशभक्ति का परिचय दिया, सब प्रकार का अध्ययन किया। अपने समय चलने वाले सभी आन्दोलनों में, कार्यों में जिन्होंने हिस्सा लिया, कांग्रेस और हिन्दू सभा दोनों में भाग लिया, क्रांतिकार्य का अनुभव लेने के लिए बंगाल में जो रहे, उन्होंने गहन चिन्तन के पश्चात राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की योजना बनाई। ऐसा नहीं हुआ कि समाचार पत्रों में छपा किसी जगह दंगे हो गये और डॉ. हेडगेवार ने कह दिया कि मैं संघ का निर्माण करता हूँ। संघ का निर्माण किसी दंगे की प्रतिक्रिया में, ओछेपन से नहीं हुआ। सम्पूर्ण राष्ट्र के निर्माण के लिए संघ का निर्माण हुआ। परमपूज्य डाक्टरजी के समय सभी ऐसा मानते थे कि हमारा अंतिम लक्ष्य केवल स्वराज्य प्राप्त करना ही हो सकता है। डा० जी अकेले थे जिन्होंने कहा कि स्वराज्य प्राप्ति अन्तिम लक्ष्य नहीं है। संघ बनने के पश्चात त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती महराज, जो क्रान्तिकारी

अनुशीलन समिति के अध्यक्ष थे ने कहा कि मुझे तो १९१६ में केशवराव ने कहा था कि महाराज, केवल स्वराज्य प्राप्ति से ही सब मामला हल होने वाला नहीं है। जब तक हिन्दुस्थान का मनुष्य अच्छा नहीं होता तब तक सारी गड़बड़ रहने वाली है। और मुझे लगता है कि मनुष्य को अच्छा बनाने का काम मुझे ही अपने हाथ में लेना पड़ेगा। यानी कितना गहन चिन्तन संघ के पीछे था। उस समय जहाँ सारे लोग सिर्फ स्वराज्य प्राप्ति तक ही सीमित थे वहीं संघ ने लक्ष्य रखा था- "परं वैभवं नेतुमेतत्स्वष्ट्रम्" - यानी परम वैभव तक स्वराष्ट्र को ले जाना है। राष्ट्र के भविष्य के लिए एक दूरगामी दृष्टि का विचार अद्भुत था। यह जानते हुए स्वयंसेवकों को चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। चिन्तन की आवश्यकता है। चिन्ता और चिन्तन में अन्तर होता है। चिन्तन में एकाग्रता होती है। चिन्ता में 'कैसे होगा, क्या होगा' इसी मन्त्र का जाप होता है।

हम जानते हैं कि आने वाले संकटों की पूर्व कल्पना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने की हुई थी। एक उदाहरण- हिन्दुस्थान का जब संविधान बन रहा था उस समय संघीय ढाँचा (Federal Structure) बनाने का विचार किया जा रहा था, श्री गुरुजी ने उसी समय चेतावनी दी, यह संघीय संरचना हमारी संस्कृति के अनुकूल नहीं है। यह सम्पूर्ण देश एक है। यह कोई संघीय देश (United State) नहीं है। यह सम्पूर्ण देश एक है। विविधता से एकता का साक्षात्कार करने वाला हमारा यह देश है। यहाँ संघीय संरचना नहीं होनी चाहिए। किन्तु जिसको बुखार हो जाता है उसे मीठी चीज भी कड़वी लगती है। वैसे ही संघ के नेतृत्व ने समय-समय पर जो चेतावनियाँ दी, वे तत्कालीन राजनीतिक नेतृत्व को जिसको राजनीतिक लाभ का बुखार चढ़ा हुआ था, ये सारी बातें कड़वी लगीं जो उन्होंने मानी नहीं यह बात अलग है। लेकिन उस समय कहा गया कि आप स्टेट या राज्य नाम की वस्तु निर्माण करेंगे तो उसके बड़े दुष्परिणाम होंगे, पर यह बात नहीं मानी गयी। उल्टे यह चर्चा शुरू हो गई कि देखो ये लोग क्या कहते हैं। ये संघीय संरचना की जगह क्या सैनिक शासन की बात करते है जिससे सारी सत्ता एक ही केन्द्र में हो। तब श्री गुरूजी जो बात कहते थे उसका विशदीकरण (Elaboration) पं० दीनदयाल जी ने किया। उन्होंने कहा कि हमारे देश के अनुकूल जो व्यवस्था हो सकती है वह है एकात्म शासन प्रणाली। विशेषत: उन्होंने यह बात बताई कि इसमें केन्द्र एक होगा, लेकिन अलग-अलग। प्रदेश नहीं रहेंगे। केन्द्र के पास ज्यादा अधिकार नहीं होंगे। नीचे की इकाई तक अधिकारों का विकेन्द्रीकरण होगा। यह कैसे होगा? आज के जैसी भाषावाद के

आधार पर प्रान्त रचना नहीं होगी। उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ परम्परागत पद्धति चलती आई है। कहीं भी आप पुरानी किताब देखिये उसमें उदाहरण मिलता है। किसी का स्वयंवर हुआ, उसमें ५६ देशों के राजा आये थे। मतलब है कि यहाँ ५६ जनपद थे, जिनकी सामान्य स्थानीय विशेषताएँ एक सी थी। राज्य या स्टेट नाम से जो कोई केन्द्र का वैकल्पिक शक्ति केन्द्र हो सकता है, ऐसे किसी राज्य या स्टेट नाम की इकाई नहीं। लेकिन केन्द्र के पास भी सत्ता का केन्द्रीकरण न हो। उनका विकेन्द्रीकरण जनपदों में हो। ये जनपद कैसे होंगे? जिनकी सामान्य स्थानीय विशेषताएँ समान हो। जैसे आंध्र का उदाहरण लें। तेलंगाना, रायल सीमा विदर्भ, सौराष्ट्र आदि। इनकी अपनी सामान्य स्थानीय विशेषताएँ हैं। ऐसे स्थानीय विशेषताएं रखने वाले ६० से ७० तक जनपद तैयार हो सकते हैं, ऐसा दीनदयाल जी ने कहा। जनपदों की स्थापना, ऐसे जनपदों की स्थापना हो जिनके पास ज्यादा स्थानीय अधिकार दिए जायँ, केन्द्र एक रहे। इसे उन्होंने एकात्म शासन प्रणाली नाम दिया। उस समय (संघीय प्रणाली) फेडरलिज्म और नो फेडरलिज्म (गैर संघीय प्रणाली) की चर्चा चल रही थी। इसी जल्दबाजी में अन्य राजनीतिक नेताओं ने इसका भाषान्तर सैनिक पद्धति की शासन-प्रणाली (Military form of govt.) के रूप में किया, जबकि इसका भाषान्तर एकात्म शासन प्रणाली (Integrated form of govt.) होना चाहिए था। यह विचार उन्होंने सामने रखा था। अब जैसा कि कहा जिसको बुखार चढ़ जाता है उसे अच्छी बात भी कड़वी लगती है। आज की परिस्थिति में देखें तो कितनी दूरदृष्टि थी उनमें। आज हम देख रहे हैं कि विघटनकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। गोरखालैंड का आन्दोलन हुआ, खालिस्तान का आन्दोलन है- ये सभी आन्दोलन विदेशी महासत्ता के आदेश पर, उसके पैसों से देश को विभाजित करने के लिए चल रहे हैं। इसलिए हम इनका विरोध करें, यह तो ठीक है, लेकिन कोई भी आन्दोलन खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ कच्चा माल चाहिए। हवा में ही कोई आन्दोलन तैयार नहीं हो सकता और ऐसे आन्दोलनों के लिए कच्चा माल क्या है यह देखने के लिए पं० दीनदयाल जी की एकात्म शासन प्रणाली का अध्ययन करें तो उसमें उन्होंने जिन ६०-७० जनपदों की स्थापना की बात की थी और उनको ज्यादा सत्ता देने के लिए कहा था आज उन्हीं क्षेत्रों में ये आन्दोलन चल रहे दिखते हैं। गोरखालैण्ड, खालिस्तान, विदर्भ- ये सभी आन्दोलन उन्हीं क्षेत्रों में हो रहे हैं जहाँ एक समान स्थानीय विशेषताएँ हैं। यानी अगर पंडित जी की विशेषता वाले जनपदों का निर्माण हो जाता तो इन आन्दोलनों का आधार

ही निकल जाता। इस तरह सिद्ध होता है कि किस तरह निर्भयता के साथ केवल राष्ट्रहित सामने रखते हुए संघ दूरगामी विचार करता है। इसीलिए संघ के बाहर के लोगों ने भी इसी बात के लिए संघ की प्रशंसा की है। मुझे स्मरण आता है कि परम पूजनीय श्री गुरुजी के महानिर्वाण के पश्चात आचार्य दादा धर्माधिकारी का भाषण हुआ। उन्होंने कहा, मेरे गुरुजी के साथ बहुत मतभेद थे। लेकिन उनकी प्रतिष्ठा मैं सबसे ज्यादा मानता हूँ। इसका एक कारण है। उनके सारे गुण मुझे पसन्द थे, ऐसा नहीं। लेकिन वही एक निर्भय था जिसने लोकप्रियता की बिल्कुल फिकर न करते हुए केवल वही बोला जो राष्ट्रहित में था। चाहे उसके कारण दुनिया ही उनके खिलाफ क्यों न हो जाए इस बात की उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। ऐसे उन्होंने दो उदाहरण दिये। पहला जिस समय गुजरात का आन्दोलन चल रहा था और सभी एक मत से भाषावाद प्रान्तों का सिद्धान्त एक महानसिद्धान्त है, ऐसी घोषणा कर रहे थे, उसी समय बम्बई में भाषण करते हुए श्री गुरुजी ने हिम्मत के साथ कहा था कि भाषावाद प्रांत की रचना देश विघटन का कारण बनने वाली है। उन्होंने दूसरा उदाहरण उस समय का दिया जब तात्कालिक राजनीति लिप्सा पूरी करने के लिए कुछ गुमराह हो चुके लोग भविष्य का विचार न करते हुए पंजाबी लोगों को यह सिखा रहे थे कि वे जनगणना में अपनी मातृभाषा हिन्दी लिखे ताकि अगले चुनाव में उनका लाभ हो सके। बड़े-बड़े लोग भी जिस समय प्रचार कर रहे थे कि हमारी मातृभाषा पंजाबी नहीं हिन्दी है, तब श्री गुरुजी ने पंजाब में साहसपूर्वक यह कहा था कि पंजाबी हमारी भाषा है। जिस पंजाबी में पवित्र गुरुवाणी निर्माण हुई वह हमारी ही पवित्र भाषा है। अत: जिसकी मातृभाषा पंजाबी है उसे पंजाबी ही लिखना चाहिए। यह वक्तव्य सब राष्ट्रीय पत्रों में आया। राजनीतिक नेताओं से पूछा गया कि लो गुरुजी का यह वक्तव्य आ गया, अब आपका क्या कहना है? उन्होंने कहा इसमें क्या फर्क पड़ता है? Mr. Golwalker is not the leader of our party श्री गोलवलकर हमारी पार्टी के नेता नहीं हैं। ऐसे वातावरण में श्री गुरुजी ने शत प्रतिशत राष्ट्रहित की बात करने की हिम्मत दिखाई, इसीलिए मैं उनका सम्मान करता हूँ। ऐसा दादा धर्माधिकारी ने कहा।

## हिन्दू राष्ट्र

सबसे बड़ा सत्य-सिद्धान्त विजयादशमी १९२५ में आया। हिन्दू राष्ट्र की घोषणा की गई। हिन्दू राष्ट्र बनाना नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करनी

है क्या? यह गलत है। जैसे गुरुत्वाकर्षण के नियम की स्थापना नहीं करनी, वह है ही। सापेक्षता के नियम की स्थापना नहीं करनी, वह है ही। इसी तरह हिन्दू राष्ट्र की स्थापना नहीं करनी है, वह है ही। केवल उसको मान्यता देनी है, घोषित करना है कि यह सत्य है। इस सत्य को मान्य करेंगे, तो हमारा लाभ होगा, नहीं करेंगे तो नुकसान होगा।

अग्नि ऊष्ण है और प्रकाश देती है, यह सत्य है। उसको हम मान्यता देंगे तो हम उससे रसोई बना सकते हैं। नहीं देंगे तो उसी अग्नि से घर जला सकते हैं। उन्होंने कहा कि यह सनातन सत्य सिद्धान्त है। परम पूज्य डाक्टर जी ने कहा कि यह हिन्दू राष्ट्र है। उन्होंने यहाँ तक कहा कि यह बहुमत के आधार पर नहीं होगा। जब तक हिन्दू राष्ट्र में एक भी हिन्दू रहेगा, यह हिन्दू राष्ट्र ही कहा जाएगा, इस पर किसी भी चर्चा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक नेताओं से भी कहा कि आप भी यही कहिए वरना दुष्परिणाम होंगे। किन्तु उस समय अंग्रेजों की चाल में आकर और तुरन्त राजनीतिक लाभ उठाने के लालच में उस समय के राजनेताओं ने इस सत्य सिद्धान्त के साथ समझौता कर लिया। अंग्रेजों ने कहा, यहाँ तो तरह-तरह के लोग हैं, हिन्दू मुसलमान हैं, वे मिलकर हमारे सामने आते हैं तो हम स्वराज्य देकर भाग जायेंगे। आप अपनी एकता का पहले निर्माण करें। नेताओं ने कहा कि यह तो बड़ा सस्ता रास्ता है, जिसमें झगड़ा नहीं करना पड़ेगा। अब एकता के लिए जो भी कीमत चुकानी पड़ेगी, चुकायेंगे और उन्होंने मुसलमानों को खुश करने के लिए गलत सिद्धान्त स्वीकार किया कि यह हिन्दू राष्ट्र नहीं। उन्होंने कहा कि यह मिला-जुला रहेगा। वास्तव में हम जानते हैं कि राष्ट्र मिला-जुला नहीं रह सकता। राज्य मिला-जुला हो सकता है, राष्ट्र और राज्य में दो बातें एक समान हैं। इसलिए कभी-कभी परिकल्पना में गड़बड़ हो जाती है। भूमि और जन ये दो ऐसे तत्व हैं जो राज्य और राष्ट्र दोनों में आवश्यक है। लेकिन राज्य के लिए दो बातें आवश्यक हैं- सरकार और प्रभुसता। इनके न रह पाने पर राज्य नहीं रह सकता। किन्तु राष्ट्र रह सकता है। सैकड़ों साल से हम कई बार परायों के राज्यों में थे। किन्तु हमारा राष्ट्र सुरक्षित रहा। राष्ट्र के लिए एक भूमि, एक संस्कृति, एक भाषा, एक जन की आवश्यकता है। राज्य के लिए एक संस्कृति आवश्यक नहीं। इसीलिए आज दुनिया में अनेक उदाहरण हैं जहाँ एक राष्ट्र में दो राज्य हैं अथवा अनेक राष्ट्रों का एक राज्य है। जर्मनी का ही उदाहरण लें। यहाँ दो राज्य और एक राष्ट्र थे। आयरलैंड, कोरिया भी ऐसे ही हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं कि एक राष्ट्र में कई

राज्य हैं। यूगोस्लाविया में तीन राष्ट्र हैं, एक जनजाति क्षेत्र है और एक राज्य था। चेकोस्लोवाकिया में दो राष्ट्र एक राज्य था। रूस में १२० राष्ट्र मिलकर एक राज्य है। एक राज्य में कई राष्ट्र और एक राष्ट्र में कई राज्य हो सकते हैं। राज्य परिकल्पना अलग है, राष्ट्र की परिकल्पना अलग है। जहाँ तक राष्ट्र का सवाल है उसकी आत्मा, संस्कृति है और एक राष्ट्र की एक ही संस्कृति है। तो एक भूमि, एक जन, एक संस्कृति ही एक राष्ट्र है। और यदि हिन्दुस्थान एक राष्ट्र है तो यह कहना कि यही मिली-जुली संस्कृति (Composite culture) है तो यह अशास्त्रीय है, यह अवैज्ञानिक है।

जैसे रसायन शास्त्र पढ़ने वाले जानते हैं, हाई स्कूल में पढ़ते समय हमें ऐसे उदाहरण दिये जाते थे। Mixture (मिश्रण) और Chemical compound (रासायनिक यौगिक) का उदाहरण दिया जाता था। सफेद दिखने वाले नमक, चीनी, बालू आदि को एक सफेद कागज पर लेकर मिला दें तो भी उनमें से कोई अपनी पहचान नहीं छोड़ता। नमक का नमकपन कायम रहता है तो चीनी अपनी मिठास नहीं छोड़ती। यह होती है मिली-जुली बात। किन्तु संस्कृति और राष्ट्रीयत्व एक जीव होता है, जैसे केमिकल कम्पाउंड। हाईड्रोजन हाईड्रोजन होगा, आक्सीजन आक्सीजन होगा। लेकिन जब दोनों मिलते हैं तो हाईड्रोजन अपना हाईड्रोजनपन छोड़ देता है, दोनों मिलकर एक पहचान बना लेते हैं। तो संस्कृति, राष्ट्र और राष्ट्रीयत्व एक होते है, दोनों मिलकर एक पहचान बना लेते हैं। तो संस्कृति, राष्ट्र और राष्ट्रीयत्व एक होते हैं, दोनों मिलकर एक पहचान बना लेते हैं। मिलीजुली बात नहीं रहती।

दूसरी बात। मिलीजुली संस्कृति की जो बात करते हैं उनका सोचना क्या है? मिलीजुली संस्कृति होने के लिए एक जैसी संस्कृति की आवश्यकता है कि नहीं! कौन-सी दूसरी संस्कृति है जिसके साथ मिलाजुला जा सकता है? मिलीजुली संस्कृति का मतलब एक है। अब कौन-सी ऐसी संस्कृति है जिसके साथ हम मिल-जुल सकते हैं? क्या ईसाइयत एक संस्कृति है, इस्लाम, यह क्या संस्कृति है? धरती के ऊपर या आसमान के नीचे कोई ईसाई संस्कृति नाम की चीज है? पश्चिमी संस्कृति (वेस्टर्न-कल्चर) नाम की कोई चीज है? वेस्टर्न कल्चर नाम की कोई चीज नहीं है। जब पोप की अधिसत्ता सम्पूर्ण यूरोप में थी तो लालच में आकर उन्होंने ईसाइयत को संस्कृति घोषित करने का प्रयास किया और कहा कि पूरे यूरोप में

ईसाई हैं, इसीलिए ईसाइयत एक संस्कृति है, उन्होंने सोचा कि पूरा यूरोप ईसाई है इसलिए मेरे प्रभाव में पूरे यूरोप की एक इकाई रहेगी। किन्तु उनका सोचना गलत हुआ। हरेक राष्ट्र की अपनी-अपनी संस्कृति थी। उस संस्कृति ने सिर ऊपर उठाया। फ्रांसिसी संस्कृति वालों ने फ्रांस राष्ट्र का गठन किया, आंग्ल संस्कृति वालों ने इंग्लैंड राष्ट्र का गठन किया, जर्मन संस्कृति वालों ने जर्मन राष्ट्र का गठन किया। अलग-अलग राष्ट्रों का निर्माण उसी यूरोप में हुआ जिसे पोप ने एक इकाई रखने का दावा किया था और हमने देखा कि दोनों महायुद्ध ईसाई राष्ट्रों में हुए, जर्मन भी ईसाई है, इंग्लैंड भी ईसाई है। एक संस्कृति का एक राष्ट्र हो सकता है। ईसाइयत भी यदि एक संस्कृति होती तो इतने राष्ट्र नहीं होते तब सब ईसाई मिलकर एक राष्ट्र का निर्माण कर लेते।

और यही बात इस्लाम की है। इस्लाम नाम की संस्कृति कहीं है? दिखाएँ, हम चुनौती देते हैं इस्लाम नाम का मजहब है, हम उसकी प्रतिष्ठा करें, इसमें हमें आपत्ति नहीं है। हम सर्व-धर्म-समभाव रखते हैं। लेकिन इस्लाम नाम की संस्कृति कहाँ? यदि इस्लाम नाम की संस्कृति होती तो मिश्र से इंडोनेशिया तक एक राष्ट्र बन जाता। यहाँ कितने राष्ट्र हैं? हरेक राष्ट्र की अपनी राष्ट्रीय संस्कृति है। एक इस्लामी राष्ट्र अपने हित के लिए दूसरे इस्लामी राष्ट्र से लड़ता रहा है, यह ईरान इराक का उदाहरण है। झगड़ा यह नहीं है कि इस्लामी नाम की संस्कृति नहीं है और हिन्दू नाम की संस्कृति है। यहाँ की राष्ट्रीय संस्कृति हिन्दू है जो सबकी संस्कृति है। यहाँ सब धर्म के लोगों के लिए उपासना स्वातंत्र्य है, जैसे चीन में है। वहाँ धर्म को व्यक्तिगत चीज माना जाता है, इसीलिए एक ही परिवार में बाप क्रिश्चियन है तो बेटा बौद्ध, पत्नी किसी और धर्म की। लेकिन उन सबकी संस्कृति चीनी है।

यहाँ भी एक भूमि है, एक जन है। यहाँ हुए मुसलमान सब अरब स्थान से आये हुए नहीं, ईसाई सब रोम से आये हुए नहीं, हमारे ही खून-खानदान के हैं। हमारे पूर्वज उनके पूर्वज हैं, हमारा इतिहास उनका इतिहास है, एक जन हैं एक भूमि है। सबकी हिन्दू संस्कृति है यानी राष्ट्रीय संस्कृति। लेकिन राजनीतिक नेताओं ने राजनीतिक लालच और अंग्रेजों के चक्कर में आकर और आजकल वोट-ब्लॉक के फेर में अलगाव की भावना का प्रचार शुरू किया है।

वास्तव में हम देखेंगे कि इस्लाम नाम की कोई संस्कृति नहीं, लेकिन अलग-अलग राष्ट्रीय संस्कृतियाँ हैं। प्रथम महायुद्ध के पश्चात विशेष रूप से राष्ट्रीयत्व का जागरण

मुस्लिम देशों में हुआ और फिर हरेक को लगने लगा कि मेरी अफगान संस्कृति है, इराक संस्कृति है, ईरान संस्कृति है, अरब संस्कृति है और इस तरह अलग-अलग राष्ट्रीयत्व का निर्माण हुआ। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जहाँ सौ प्रतिशत मुसलमान थे, वहाँ के मत के ठेकेदार मुल्ला-मौलवियों ने राष्ट्रीयत्व का विरोध किया। हिन्दुस्तान में चूँकि यहाँ का राष्ट्रीयत्व ही हिन्दू राष्ट्रीयत्व है इसके कारण, यहाँ लोग कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा है, रामजन्म भूमि और बाबरी मस्जिद का झगड़ा है। यह बात ही गलत है कि हिन्दू-मुस्लिम का झगड़ा नहीं है। यहाँ के मुस्लिम सब हमारे हैं। यहाँ के ईसाई सब हमारे हैं। हमारे ही पूर्वजों की संताने हैं। धर्मान्तरण का मतलब राष्ट्रान्तरण नहीं हो सकता यह उनको गलत समझाया जा रहा है। लेकिन दु:ख की बात है कि लालच में आकर उनको गलत समझाने का काम हमारे नेताओं ने किया। ये जो सारे अलगाववादी लोग थे, ये सब कट्टरपंथी थे ऐसी बात नहीं है। नयी पीढ़ी के युवाओं को आश्चर्य होगा कि जिन्होंने पाकिस्तान के निर्माण के लिए प्रयास किया, उनमें से बहुत से लोग पूरे राष्ट्रवादी थे। आज जो बात हम बोल रहे हैं वही उनके मन में थी, इसलिए कांग्रेस में थे, राष्ट्रवाद के कारण कांग्रेस में थे। पाकिस्तान की परिकल्पना के जनक मोहम्मद इकबाल भी राष्ट्रवादी थे। उन्हीं का गीत है सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा। बेरिस्टर 'जिन्ना' कांग्रेस में थे, तिलक जी के साथ। किन्तु कांग्रेस ने जिस तरह का अधैर्य दिखाया कि तुरन्त कुछ सत्ता का सुख चाहिए, उसने सन्तुलन बिगाड़ दिया। कांग्रेस के नेता अलगाव की बात करने वालों के साथ जाएँ? और फिर इन लोगों ने पाकिस्तान का समर्थन किया। अर्थात् हमने अच्छे लोगों को अधैर्य, जल्दबाजी और तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लालच के कारण खराब किया। यदि हम इन लोगों से पहले कहते, यह हिन्दू राष्ट्र है, यहाँ की राष्ट्रीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति है तो उसको मानने वाले मुसलमान कांग्रेस में थे। उनकी उपेक्षा करते हुए अलगाववादी लोगों के साथ बातचीत करने के कारण अच्छे लोगों को हमने उनकी गोद में डाल दिया। देखा जाय तो संस्कृति हर एक राष्ट्र की अलग-अलग है, सब इस्लामी राष्ट्रों की एक संस्कृति नहीं। और जिस समय सौ प्रतिशत मुस्लिम देशों में भी राष्ट्रीय जागरण शुरू हुआ, तो वहाँ के मुल्ला-मौलवी राष्ट्रीयत्व बर्दाश्त नहीं कर सके। अफगानिस्तान में जिस समय अमानुल्ला ने कहा कि हम मुसलमान जरूर हैं, मुहम्मद साहब को मानते हैं, कुरान को मानते है, लेकिन हमारी अफगान संस्कृति है। मुल्ला-मौलवियों ने उसका इतना विरोध किया कि बेचारे को भागना पड़ा। ईरान

में राष्ट्रीयत्व का जागरण हुआ और वहाँ के राष्ट्रवादियों ने अपनी संस्कृति, अपने राष्ट्रीय इतिहास, राष्ट्रीय पूर्वजों का पुनर्भरण किया। जमशेद, रुस्तम, सोहराब ऐसे जो राष्ट्रीय पूर्वज थे उनका पुनर्स्मरण किया। मुल्लाओं ने कहा कि ये काफिर लोग हैं क्योंकि सोहराब, रुस्तम आदि तो गैर-मुस्लिम थे। यह तो स्वाभाविक है। क्योंकि मोहम्मद साहब का जन्म तो चौदह सौ साल पहले हुआ ये तो उसके पहले जन्मे थे। ये कैसे मुस्लिम हो सकते थे। लेकिन हमारी ईरानी संस्कृति और ईरानी राष्ट्रीयता के ये महापुरुष हैं, हम उनका स्मरण करेंगे। मुल्ला-मौलवियों को लगा कि उनकी ठेकेदारी उनका एकाधिकार समाप्त हो रहा है। उन्होंने उनका विरोध किया। जिस समय खजूरपाशा ने मिश्र की राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि के रूप में कहा कि सारे राजा जो तीन-चार हजार साल से पहले हो गए, वे हमारे पूर्वज हैं और यह कहकर उनकी स्मृति का जागरण किया तो मुल्ला-मौलवियों ने उसका विरोध किया। तुर्की के मुस्तफा कमालपाशा का तो अनूठा उदाहरण है। पाशा ने कहा कि हमारा तुर्की राष्ट्र है, हमारी तुर्की संस्कृति है। खिलाफत को उन्होंने तोड़ डाला। जैसे ही तोड़ा तो हिन्दुस्थान के मुसलमानों और उनके साथ कुछ कांग्रेस के लोगों ने कहना शुरू किया कि खिलाफत का पुनरुजीवन होना चाहिए यानी जिस मुस्लिम देश में खिलाफत थी, उसके प्रमुख मुस्तफा कमालपाशा खिलाफत को तोड़ रहे थे, पर यहाँ के हिन्दू और मुसलमान माँग कर रहे थे कि खिलाफत का पुनरुजीवन हो। यहाँ के मुसलमान वहाँ गये। बोले साहब आपके राज्य में खिलाफत का पुनरुजीवन अभी तक नहीं हुआ। उन्होंने सोचा यह भी लालच में आ जायेगा जैसे हमारे देश के नेता बन जाएं। तो कमालपाशा ने कहा 'मैं खिलाफत की कल्पना के विरोध में हूँ, उसका पुनरुज्जीवन नहीं होगा' और इतना ही नहीं, उन्होंने कहा कि हमें राष्ट्रीय संस्कृति का जागरण करना है। हम मोहम्मद साहब को मानते हैं, कुरान को मानते हैं, मस्जिद में जायेंगे। लेकिन यह क्या जरूरी है कि इस्लाम के नाम पर हम तुर्क लोगों पर अरबी संस्कृति का, विदेशी संस्कृति का आक्रमण हो जाये? उन्होंने अरबी संस्कृति के प्रतीक नष्ट करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा अरबस्तान में बालू बहुत है इसलिए वहाँ पर्दे का चलन होगा। पर तुर्की में बालू रेत नहीं है, पर्दा इस्लाम का हिस्सा नहीं है। यह तो अरबी संस्कृति का हिस्सा है। तुर्की में पर्दा नहीं चलेगा। तुर्की भाषा में अरबी शब्द बहुत मात्रा में थे, तो जैसे हिन्दुस्थान में सावरकरजी ने भाषा शुद्धि का आन्दोलन चलाया, वैसे ही उन्होंने तुर्की की भाषा शुद्धि की और ढूंढ-ढूँढ़कर सारे अरबी शब्दों को तुर्की से निकाल दिया। उन्होंने कहा कि हम

मोहम्मद साहब को मानते हैं, लेकिन अरबी संस्कृति का प्रभुत्व हम बर्दाश्त नहीं करेंगे। क्या अल्ला इतना अज्ञानी है कि उसे अरबी भाषा में की गई प्रार्थना ही समझ में आती है। तुर्की भाषा में की गई प्रार्थना को वह समझ नहीं सकेगा? क्या वह इतना अनपढ़ है? उन्होंने अरबी कुरान का तुर्की भाषा में अनुवाद किया और आदेश दिया कि फलाने-फलाने शुक्रवार को सभी मस्जिदों में तुर्की भाषा में कुरान पढ़ी जायेगी। आपको आश्चर्य होगा कि वहाँ जब राष्ट्रीय जागरण हुआ तो कट्टरपंथी मुल्ला-मौलवी इतने नाराज हो गए कि वहाँ उनके और राष्ट्रवादियों के बीच में हर गाँव में दंगे हुए। बड़े-बड़े शहरों में रक्तपात हुआ। वहाँ तो रामजन्म भूमि और बाबरी मस्जिद का विवाद नहीं था। सवाल था राष्ट्रवाद और मुल्ला-मौलवियों के कट्टरवाद का। किन्तु यह सारा रक्तपात बर्दाश्त करते हुए भी बड़ी हिम्मत के साथ उन्होंने कहा कि तुर्की भाषा में ही कुरान पढ़ी जायेगी अरबी भाषा में नहीं। क्योंकि तुर्की ही हमारी राष्ट्रीय भाषा है।

हमारे यहाँ यह जो कहा जाता है कि हिन्दु-मुस्लिम का सवाल है यह बिल्कुल गलत है। जहाँ सौ प्रतिशत मुस्लिम देश हैं वहाँ भी कट्टर पंथी मुल्ला-मौलवी हैं। वह लोगों के मन में अपनी पकड़ ढ़ीली हो जाने के भय से राष्ट्रीयता के जागरण को बर्दाश्त नहीं करते, वैसे ही यहाँ भी नहीं कर सकते। क्योंकि वे चाहते हैं कि लोगों की श्रद्धा पर उनका एकाधिकार होना चाहिए। अब यह बात अलग है कि वहाँ किसी की ईरान संस्कृति है, किसी की अफगान संस्कृति है। इसीलिए जो हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा दिखाई देता है वह वास्तव में राष्ट्रीयता और कट्टरवाद का झगड़ा है। यही हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व होने के कारण हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा दिखाई देता है। इंडोनेशिया में ८५ प्रतिशत लोग मुसलमान हैं, संस्कृति हिन्दू है। सब लोग कुरान पढ़ते हैं, मस्जिद में जाते हैं, मोहम्मद साहब को मानते हैं, लेकिन रामलीला भी करते हैं, पाण्डवों को, रामचन्द्र जी को अपना पूर्वज मानते हैं, रामायण और महाभारत की कथाएँ पढ़ते हैं। पाकिस्तान के विदेशमंत्री ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इण्डोनेशिया के प्रधानमंत्री को कहा कि तुम मुसलमान होते हुए राम और कृष्ण को कैसे मानते हो? तो उन्होंने जवाब दिया, 'we have changed our religion, but not our fore fathers' हमने अपना धर्म बदल दिया है, पर अपने पूर्वजों को नहीं बदला। वहाँ ऐसा चल जाता है कि विद्यार्थी सुबह कुरान पढ़ता है और परीक्षा में जाते हुए गणेश की पूजा करता है। इंडोनेशिया में हिन्दू संस्कृति है और धर्म मतानुसार इस्लामी है, यह बात सही है। इस्लाम धर्ममत हो सकता है पर

इस्लाम की कोई संस्कृति नहीं। जब यहाँ मिली-जुली संस्कृति की बात की जाती है तो यह गलत है। यहाँ के राजनीतिज्ञों ने सत्ता हथियाने के लिए असत्य से समझौता किया है। जो संस्कृति अस्तित्व में नहीं, उसके साथ आप कैसे मिल सकते हैं। एक राष्ट्र की एक ही संस्कृति होती है यहाँ हिन्दुत्व ही राष्ट्रीय संस्कृति है। अपनी-अपनी कुरान पढ़ते हुए, अपनी-अपनी बाइबिल पढ़ते हुए, मोहम्मद साहब को मानते हुए सभी लोग राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दू हैं। वह धर्ममत है, यह राष्ट्रीयता और संस्कृति है। किन्तु एक मिथ्या सिद्धान्त को थोपने के कारण तात्कालिक राजनीतिक लाभ भले ही हुआ हो पर उसकी फलश्रुति देश विभाजन के रूप में हम देख सकते है। लेकिन बड़े दुर्भाग्य की बात है कि खण्डित भारत में सत्ता प्राप्ति के बाद भी राजनीतिक लोभ के कारण असत्य के साथ समझौता करने की प्रवृति आज भी बढ़ रही है और आज भी उन्हीं स्वार्थों के कारण उनमें यह घोषणा करने की हिम्मत नहीं कि यह हिन्दू राष्ट्र है। यह कल्पना करिये कि हिन्दू राष्ट्र बोलने से विघटनकारी बात कहाँ खो जाती है। विघटनकारी शक्तियों को नष्ट करने की क्षमता हिन्दू राष्ट्र में ही है। मिलीजुली संस्कृति में नहीं।

### सही निदान

हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू संस्कृति में बहुत ताकत थी, इस सत्य सिद्धान्त को अधैर्य के कारण छोड़ दिया, उसके दुष्परिणाम आज भुगत रहे हैं। परन्तु अपने स्वयंसेवकों के मन में यह श्रद्धा रहनी चाहिए कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सिद्धान्त अच्छे हैं, जिनकी विजय निश्चित हैं, दूरगामी दृष्टी के आधार पर परम पूजनीय डाक्टर जी द्वारा विचारित कार्यपद्धति जब हमारे पास हैं तो फिर हमें संकटों से घबराने की आवश्यकता है क्या? हम यह जानते हैं कि ऐसे राष्ट्रीय संकट निर्माण होंगे, इसकी चेतावनी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने बार-बार दी थी। संविधान बनाने के समय दी थी, संघ के निर्माण के समय दी थी, शासन प्रणाली का जब विचार हुआ उस समय दी थी यानी ये जो सारे संकट आ रहे हैं, वे हमारे लिये अकल्पनीय नहीं थे। कहा गया है कि कोई भी बीमारी हो तो उसका सही निदान आधा उपचार है। सही निदान राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के पास है, वह इलाज भी जानते हैं। जैसे-जैसे, बार-बार चेतावनी दी, लेकिन मीठी बात थी वह राजनीतिक लिप्सा के कारण कड़वी लगने लगी। आगे चलकर कैसे राष्ट्र का निर्माण करना है, इसका पूरा विचार राष्ट्रीय

स्वयंसेवक संघ के पास है। यह पूर्ण श्रद्धा रखते हुए संघ के नेतृत्व ने सच्चे सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। संघ के नेतृत्व ने दूरगामी दृष्टि रखते हुए नेताओं को बताया कि किस तरह के संकट आ सकते हैं। गलत कदमों के कारण राजनीतिक लिप्सा के कारण असत्य के साथ समझौता करने वाले नेता निर्माण हुए, जिसके दुष्परिणाम हम आज भुगत रहे हैं। इन सब परिणामों की कल्पना पहले की गई थी। यह कहा गया था कि आज श्रेष्ठ पुरुष है, किन्तु श्रेष्ठ पुरुष भी यदि असत्य के साथ समझौता करता है तो दुष्परिणामों से मुक्ति नहीं मिलती। तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिए यदि श्रेष्ठ पुरुष भी असत्य के साथ समझौता करता है और कहता है 'अश्वात्थामा हत: नरोवा कुंजरोवा' तो इसका अर्थ है कि उसने असत्य के साथ समझौता कर लिया। भले ही तात्कालिक राजनीतिक लाभ हुआ होगा। पर दुष्परिणामों से छुट्टी नहीं हुई। जैसे ही युधिष्ठिर ने कहा- 'अश्वत्थामा हत: नरोवा कुंजरोवा', वैसे ही धरती के ऊपर चलने वाला उनका रथ धड़ाम से धरती पर आ गिरा। आप महापुरुष होते हुए असत्य से समझौता करेंगे तो धरती के ऊपर से चलने वाला आपका रथ धरती पर आ गिरेगा, यानी दुष्परिणामों से छुट्टी नहीं होगी।

जब हम जानते हैं कि सत्य सिद्धान्त हमने लिया और आगे चलकर 'परं वैभवं नेतुमेतत्स्वराष्ट्रम्' की दृष्टि से पूरी योजना हमारे पास है, तो फिर संकट की क्या बात है। कई लोग ऐसा समझते हैं जो सत्य को टालना चाहते हैं और आलसी हैं कि यह ईश्वरीय कार्य है, इससे हम क्यों कष्ट भुगतें। हमारे लिए सुविधा होनी चाहिए। गुलाब का बिछौना होना चाहिए। ईश्वरीय कार्य है तो आप समझ लीजिए कि हमें अयोध्या नगरी छोड़नी पड़े, हो सकता है हमें जंगल में जाना पड़े, हो सकता है सीता का अपहरण हो, लक्ष्मण की तरह हमारे भाइयों को शक्ति लगे, उन्हें मूर्च्छित होना पड़े। हमें बहुत भावनात्मक कष्ट होगा। यह भी हो सकता है कि परम वैभव साधन सम्पन्न आसुरी शक्ति के खिलाफ साधनहीन जब हम खड़े हों तो हमारी स्थिति से भयभीत होकर उनके मन में यह भाव आ जाए कि "रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषण भयो अधीरा।" यह सारा होते हुए भी, क्योंकि सिद्धान्त सत्य हैं, ईश्वरीय कार्य है, इसमें से कोई रास्ता निकल लंका विजय होने वाली है, इसमें अविश्वास करने की जरूरत नहीं। यह सारा होगा ही। लंका विजय के बारे में अविश्वास करना घोर नास्तिकता है।

यह हो सकता है कि हम युद्ध हार जायेंगे, हो सकता है कि युद्ध हारने के बाद हमारी आंखों के सामने अपमानजनक द्रौपदी वस्त्रहरण होगा, हो सकता है हमें जंगल में जाना पड़े। जिसे भूमिगत जीवन कहा करते हैं ऐसा भी अज्ञातवास में जीना पड़ेगा, इस अज्ञातवास में अर्जुन जैसे वीर पुराष को परिस्थितियों के दबाव में बृहन्नला का वेश धारण करना पड़ सकता है। बृहन्नला का मतलब होता है न पुरुष न स्त्री। यह भी हो सकता है, लड़ाई की जब तैयारी चलेगी तो जीवन मूल्य अलग-अलग होने के कारण लोग कहेंगे ये तो पागल लोग हैं इनको पता नहीं है तैयारी कैसे करनी है। बहुसंख्यक यादव लोगों को हमने शत्रु को दे दिया और जिसको नगण्य अल्पसंख्या कहेंगे ऐसे भगवान कृष्ण को हमने आपने साथ रख लिया। वे भी ऐसी प्रतिज्ञा लिए हुए कि "मैं शस्त्र धारण नहीं करूंगा।"

ऐसे आदमी का क्या लाभ? हमारी इच्छाएँ और हमारी प्राथमिकताएँ गलत हैं, ऐसा व्यवहार चतुर हमारे शुभेच्छु समझ सकते हैं। और यह भी हो सकता है कि जब लड़ाई शुरू हो जाती है तो हमारे सामने महाविनाश हो सकता है। हमारे जवान लड़के मृत्यु के मुख में जा सकते हैं, जिनको हमारा श्राद्ध करना चाहिए, उनका श्राद्ध हमें करना पड़ जाए, ऐसे दु:ख-जनक प्रसंग भी हमारे सामने आ सकते हैं। लेकिन यह सारा होते हुए भी आखिर विजय 'यत्र योगेश्वर: कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर:' वहीं विजय होने वाली है।

यह तो ईश्वरीय कार्य है, इसका मतलब है कि यह सत्य सिद्धान्त है। यही कार्यपद्धति ठीक है। सभी योजनाएँ इसी आधार पर क्रियान्वित होती हैं और आज यदि काम की गति धीमी है तो उसे बढ़ाने के लिए इधर-उधर भटकना, छोटे रास्ते का विचार करना यह उचित नहीं है। जो एक रास्ता हमारे सामने प्रस्तुत है, वही एक रास्ता ठीक है यह सोचते हुए ज्यादा से ज्यादा समय और अधिकतम शक्ति उसमें लगाना यही सफलता का एकमात्र साधन हो सकता है। किसी भी तरह से मन में शिथिलता न लाते हुए यही विश्वास रखें कि जहाँ योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन हैं, विजय वहीं होने वाली है।

साभार- दैनिक स्वदेश, सतना

**“जय भारत माता।।”**